Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 2 | November 2025 - April 2026 | pp. 73-78

# राजपूती शौर्य की अमर गाथा : चित्तौड़गढ़ के प्रमुख शासक गण

**रंजना शर्मा**

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

## शोध सारांश

*गुहिल वंश की स्थापना प्रतापी शासक गुहिल द्वारा की गई जिन्हें आगे चलकर गहलोत कहा जाने लगा। इस वंश की अनेक शाखाएँ विकसित हुईं जिनमें सिसोदिया शाखा सर्वाधिक प्रसिद्ध रही। बप्पा रावल को इस वंश का प्रथम महान शासक माना गया है। उन्होंने विदेशी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष कर राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ किया। उनके साहस और पराक्रम ने मेवाड़ को एक नई पहचान प्रदान की जिसमें रावल जैत्रसिंह ने चित्तौड़ की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करते हुए उन्होंने दिल्ली सल्तनत की सेनाओं को पराजित कर मेवाड़ की शक्ति को मजबूत बनाया वहीं तेजसिंह के शासनकाल में कला, स्थापत्य और धार्मिक गतिविधियों को संरक्षण मिला। रावल रतनसिंह के समय अलाउद्दीन खिलजी का आक्रमण तथा रानी पद्मिनी के नेतृत्व में हुआ जौहर चित्तौड़ के प्रथम साके के रूप में इतिहास में अमर हो गया। राणा हम्मीर ने सिसोदिया शक्ति को पुनः संगठित कर मेवाड़ को स्वतंत्रता दिलाई। महाराणा लाखा के शासनकाल में जावर की चाँदी की खान मिलने से राज्य की आर्थिक स्थिति मजबूत हुई। महाराणा कुम्भा का काल मेवाड़ का स्वर्णकाल माना गया है। महाराणा साँगा ने समस्त राजपूत शक्तियों को एकजुट कर मुगल और सल्तनती शक्तियों का सामना किया। उन्होंने खानवा के युद्ध में बाबर के विरुद्ध उनका संघर्ष भारतीय वीरता और स्वाभिमान का प्रतीक माना जाता है। महाराणा प्रताप इस शोध का सर्वाधिक प्रेरणादायी व्यक्तित्व बनकर उभरते हैं। उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की और हल्दीघाटी के युद्ध में अदम्य साहस का परिचय दिया। उनका संघर्ष मातृभूमि-प्रेम, स्वतंत्रता और स्वाभिमान का सर्वोच्च उदाहरण है। प्रस्तुत शोध पत्र में गुहिल वंश के उद्भव, विकास तथा मेवाड़ के इतिहास में उसके महत्वपूर्ण योगदान का विश्लेषण किया गया है।*

**संकेताक्षर**—*चित्तौड़गढ़, गुहिल वंश, सिसोदिया राजवंश, वीरता, जौहर एवं साका, राष्ट्रभक्ति एवं स्वाभिमान*

## प्रस्तावना

चित्तौड़गढ़ में गुहिल वंश की शुरूआत प्रतापी राजा 'गुहिल' से मानी जाती है जिन्हें बदलते समय के साथ-साथ 'गहलोत' कहा जाने लगा। इसमें कर्नल टॉड जैसे अनेक विश्वविख्यात इतिहासकारों ने गुहिलों का सम्बन्ध वल्लभी के शासकों से माना ये अपनी शिक्षा और कला के लिए भी जाने जाते हैं। जिसका उल्लेख हमें आहड़ से प्राप्त लेखों, मुहणोत नैणसी की ख्यात कुंभलगढ़ प्रशस्ति और एकलिंगी महात्म्य से मिलता है। इनका सम्बन्ध आनंदपुर के ब्राह्मण वंश से माना जाता है। चित्तौड़गढ़ के शासकगणों की प्रशासनिक दक्षता उनके द्वारा किए गए संघर्ष और राज्य की गौरवशाली प्रतिष्ठा को रेखांकित करती है। कविराज श्यामलदास ने 'वीरविनोद' मेवाड़ का इतिहास में राजपूत राजवंश की कुल 36 शाखाएँ मानी है जिसमें 16 सूर्यवंशी, 16 चन्द्रवंशीय और 4 अग्निवंशी शाखाओं के माध्यम से समझाया है। इसमें से कुछ राजवंश समय के साथ नष्ट हो गये और कविराज श्यामलदास ने गुहिल राजवंश को 25 शाखाओं में विभक्त किया है—

1. गुहिलोत 2. सिसोदिया 3. पिपाड़ा 4. मांगल्या 5. मगरोपा 6. अजवरया 7. केलवा 8. कूंपा 9. भीमल 10. धोरण्या 11. हुल 12. गोधा 13. आहाड़ा 14.नादोत 15. सोबा 16.आशयत

17. बोढा 18.कोढा 19. करा 20. भटेवरा 21. मुदोत 22. घालरया 23. कुचेला 24. दुसंघ्या 25. कड़ेचा।

**बप्पा रावल (734-753 ई.)**—बप्पा रावल चित्तौड़ के शासक ही नहीं, बल्कि अमिट राष्ट्रीय चेतना के भी प्रतीक रहे है। इनका पराक्रम अन्धकार में जलती हुई मिशाल के समान है। "बप्पा रावल का इतिहास एक अत्यंत साहसी और प्रतापी राजा के रूप में रहा इनके जीवन की कहानी संघर्ष और शक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है। इनके पिता रूपसी के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गये जिसके कारण इनकी माता ने नागदा में ब्राह्मण के घर शरण ली। जहाँ इनके गर्भ से बप्पा का जन्म हुआ। यहाँ बड़े होने पर ब्राह्मण की गायों को चराने के लिए रोज जंगल में ले जाते। इस दौरान इनकी मुलाकात हारीत ऋषि से हुई जो भोडेला तालाब के पास तपस्या कर रहे होते हैं। बप्पा इनकी दिन रात सेवा करते जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने अपने तपोबल से बप्पा को अनेक शक्तियाँ प्रदान की।[1] राजप्रस्ति महाकाव्य में महाकवि रणछोड़ भट्ट ने किंवदंतियों के माध्यम से बताया कि ये बारह लाख बहत्तर हजार सेना रखते 35 हाथ लंबा पट्टवस्त्र, 16 हाथ लंबा निचोल और 50 पल सोने का कड़ा पहनते उसकी तलवार का वजन 40 सेर रहा और बप्पा दुर्गा पूजा पर एक प्रहार में दो भैंसों की बलि देते—

पंचाधिकाकत्रिंशदमंदहस्त-
प्रणामयुक्पट्टपट दधानः।
वभो निचोल किल षोडशोध-
त्करप्रणामं विमल वसांनः॥[2]

ये चित्तौड़गढ़ के सबसे शक्तिशाली राजा हुए जिन्होंने मान मोरी राजा को हराकर चित्तौड़ दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इनका वास्तविक नाम 'कालभोज' रहा और बाद में इन्होंने 'बापा की उपाधि' धारण कर ली और इतिहास में इन्हें महान राष्ट्र भक्त भी कहा जाता है।[3]

**रावल जैत्रसिंह (1213-1253 ई.)**—चित्तौड़गढ़ के इतिहास में महाराणा जैत्रसिंह का नाम एक ऐसे शासक के रूप में उभरता है जिन्होंने चित्तौड़गढ़ को सिर्फ किलो का नगर ही नहीं बनाया बल्कि इसे मेवाड़ की राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का केंद्र बनाया। "चित्तौड़गढ़ शासक नरवन के बाद इसकी शक्ति का पतन होना शुरू हो गया और परमार मुंज ने आहड़ को नष्ट कर चित्तौड़ पर अपना अधिकार कर लिया। इनके बाद चित्तौड़ शासक अम्बा प्रसाद भी चौहानों से हार गए और इनके बाद कितु सिंह को भी हारकर चित्तौड़ को छोड़ कर जाना पड़ा। इसके बाद जैत्रसिंह ने परमारों को युद्ध में हराकर चित्तौड़ की गौरवशाली प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर इसे अपनी राजधानी के रूप में बसाया। इन्होंने 1227 ई. में भुताला के युद्ध में दिल्ली सुल्तान इल्तुतमिश की सेना को करारी शिकस्त दी जिसका वर्णन हमें जयसिंह सूरी कृत 'हम्मीर मदमर्दन' ग्रन्थ से मिलता है। इन्होंने 1248 ई. में सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद की सेना को हराकर आहड़, वागड़, तथा कोटड़ा जैसे क्षेत्रों को चित्तौड़ राज्य में शामिल कर लिया।[4]

**तेजसिंह (1250-1273 ई.)**—जैत्रसिंह के मृत्यु के बाद उनके पुत्र तेजसिंह चित्तौड़ के राजा बने इन्होंने 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वेर' जैसी बड़ी उपाधियाँ धारण कर ली इसके चिरवे के शिलालेख के अनुसार विसलदेव से चित्तौड़ की रक्षा करते हुए इनके प्रधान सेनापति रत्न और भीमसिंह शत्रुओं से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए संभवतः यह युद्ध चित्तौड़ के किले की तलहटी में हुआ जिसका प्रमाण हमें विसलदेव के दानपात्र से मिलता है।"[5] "तेजसिंह की पत्नी जेतलदेवी ने श्याम पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण करवाया वहीं इनकी दूसरी पत्नी रूपादेवी ने जोधपुर में बावड़ी का निर्माण करवाया जहाँ इनके पुत्र कुँवर क्षेत्रसिंह का जन्म हुआ इनके शासनकाल में 1261 ई. 'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूणिर' प्रथम ताड़पत्र पर चित्रित ग्रन्थ है इसमें कुल 6 चित्र बने है।[6]

**रावल रतनसिंह (1302-1303)**—चित्तौड़ के शासक रतनसिंह उस समय सारे हिन्दू राजाओं में श्रेष्ठ, अपनी वीरता, उदारता, साहस और बलिदान के लिये जाने जाते है जिन्होंने अपने शासनकाल में कई युद्ध लड़ें और चित्तौड़ की सीमाओं का विस्तार किया उनके समान कोई दूसरा राजा नहीं है।

सूर वीर अति साहसी, सब राई मइ सिरमौर।
'रतनसेन' राणो तिहां, जा सम भूप न और॥[7]

अलाउद्दीन खिलजी ने रानी पद्मिनी को पाने के लिए चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। राजा रतन सिंह के वीरगति को प्राप्त हो जाने पर रानी पद्मिनी ने सतीत्व की रक्षा करते हुए 26 अगस्त 1303 में 1600 क्षत्राणियों के साथ जौहर कर लिया जो चित्तौड़ का 'प्रथम साका' कहलाता है।[8]

**राणा हम्मीर (1326-1364 ई.)**—चित्तौड़ के इतिहास में सिसोदिया वंश में एक से बढ़कर एक वीर सूरमा राजा हुए है,

जिनमें से एक नाम राणा हम्मीर सिंह का आता है। ये सिसोदे के सामंत अरिसिंह के पुत्र रहे हैं जो अलाउद्दीन खिलजी से लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गये। राणा हमीर का लालन-पालन ननिहाल में हुआ। हम्मीर बचपन से ही बड़े वीर साहसी निर्भीक रहे। इन्हीं गुणों को देखकर राणा अजयसिंह ने अपने पुत्र सज्जन सिंह की स्थान पर हम्मीर को चित्तौड़ का राजा चुना।[9] जिस प्रकार कहा जाता है कि हंस केवल मोती चुगते है कई दिनों तक शेर भूखा रहने पर भी घास नहीं। उसी प्रकार हम्मीर किसी के सामने नहीं झुकता है।

की हंसा मोती चुगे, कि लघन करि मरिजाय।
सहस वर्ष भूखा रहे, सिंह घास नहिं खाय॥[10]

**महाराणा लक्ष्यसिंह/लाखा (1382-1421 ई.)**—राणा क्षेत्रसिंह (खेता) की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र महाराणा लक्ष्यसिंह चित्तौड़ के शासक बने इनके नाम के साथ बूँदी के एक नकली मिट्टी के किले की कहानी जुड़ी हुई है। चित्तौड़ और बूंदी के सम्बधों के लिए कुम्भा हाड़ा ने अपना बलिदान कर देते हैं। इनके शासनकाल में ही जावर जैसी प्रसिद्ध चाँदी की खान मिली। इस धन का प्रयोग महाराणा ने जनता की भलाई के कार्य और मन्दिरों के निर्माण में किया। इन्हीं के शासनकाल में 'पिछौला झील' का निर्माण छितर बंजारे ने करवाया। इनके शासनकाल में अनेक घटनाक्रम हुए जिसके अंतर्गत मारवाड़ के कुँवर रणमल की बहन हंसाबाई का विवाह लाखा के बड़े पुत्र चुंडा के साथ होना तय हुआ मगर परिस्थितिवश राजकुमारी हंसाबाई का विवाह महाराणा लाखा के साथ हो गया जिसके कारण इनके योग्य पुत्र चुंडा को चित्तौड़ के राजा बनने से वंचित होना पड़ा इस त्याग के कारण चुंडा को मेवाड़ का 'भीष्म पितामह' कहा जाता है।[11]

**महाराणा मोकल (1421-1433 ई.)**—महाराणा लाखा का स्वर्गवास हो जाने पर चित्तौड़ की राज व्यवस्था चुंडा देखने लग गये जिस के कारण रानी हंसाबाई को चूंडा पर संदेह हो गया और उन्होंने चूंडा से पूछा कि मेरे बेटे मोकल के लिए कौन इलाका तय किया है। इस पर चूंडा ने बड़ी विनम्रता से जवाब दिया और अपने पिता को दिये हुए वचन के अनुसार मोकल को चित्तौड़ का राजा बनाया। वे जब तक चित्तौड़ में रहे मोकल के सेवक की तरह रहे इसके बाद वे विक्रमी संवत 1454 में वे मालवा के सुल्तान के पास चले गये।[12] चुंडा के जाने के बाद हंसाबाई ने अपने भाई को चित्तौड़ बुला लिया जिसके कारण मोकल के प्रारंभिक शासन पर इनके मामा राठौड़ रणमल का प्रभाव रहा और कुछ समय बाद ही दासी पुत्र चाचा और मेरा के बीच चित्तौड़ को लेकर भयंकर मनमुटाव हो गया और इसके कुछ दिनों बाद ही अवसर का फायदा उठाकर चाचा और मेरा ने छोटी आयु में महाराणा मोकल की हत्या कर दी।[13]

**महाराणा कुम्भा (1433-1468 ई.)**—महाराणा मोकल की हत्या के बाद अल्पायु में कुम्भा चित्तौड़ के शासक बने। वे इतने वीर राजा हुए जिन्होंने अपने जीवन भर में कोई युद्ध नहीं हारा। इन्होंने अनेक किलों का निर्माण करवाकर स्थापत्य कला को नई ऊंचाई प्रदान करी। "महाराणा कुम्भा 1433 ई. में चित्तौड़ का शासक बनने के बाद अपनी सूझबूझ से चित्तौड़ की बिखरी हुई आंतरिक स्थिति को सुदृढ़ किया और इन्होंने 1437 ई. में सारंगपुर के युद्ध में मालवा के शासक महमूद खिलजी प्रथम को परास्त कर पूरे छः महीने तक जेल में बंदी बनाकर रखा इस विजय के उपलक्ष में इन्होंने विजय स्तम्भ का निर्माण (1440-1448) करवाया[14] जिसका उल्लेख हमें रामवल्लभ सोमानी की पुस्तक 'महाराणा कुम्भा' में मिलता है। इनके कालखंड को स्थापत्य का 'स्वर्णकाल' कहा जाता है।

सकल कविनृपाली-मौलीमाणिक्यक्यरोचि-
मधुररणितवीणावाद्यवैशधबिंदुः
मधुकरकुललीलाहारि रसाली,
जयति-जयति कुंभो भूरिशौर्या शुमाली॥[15]
(कीर्ति स्तंभ प्रस्तुति)

इन विजय के कारण कुम्भा का इतना प्रभाव बढ़ गया कि लोग इन्हें हिन्दुओं का राजा मानने लग गये और मुसलमानों ने हिन्दुओं का दिल दुःखाने के लिए नागौर में गौवध अर्थात् गायों को मारना शुरू कर दिया। इस बात पर महाराणा कुम्भा बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने नागौर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया। इस विजय के बाद महाराणा को भारी मात्रा में धन-दौलत और हनुमान जी की एक मूर्ति मिली जिसे इन्होंने कुम्भलगढ़ दुर्ग हनुमान पौल के पास स्थापित करी।[16]

**महाराणा साँगा (1509-1528 ई.)**—रायमल की मृत्यु के बाद महाराणा संग्राम सिंह चित्तौड़ के शासक बने, जिन्हें पूरी दुनिया महाराणा साँगा के नाम से जानती है। वे अपने दादा कुम्भा की भांति बड़े साहसी और वीर रहे उन्हें गौरव

का प्रतीक भी माना जाता है उनके इसी व्यक्तित्व के कारण इनके शरीर पर 80 घाव होने के बाद भी जीवन में कभी हार नहीं मानी जिसके कारण इन्हें 'भग्नावशेष' भी कहा जाता है। "इन्होंने राजपूतों की बिखरी हुई ताकत को एक सूत्र में पिरोने का काम किया और इन सभी राजपूतों के एक साथ आने से चित्तौड़गढ़ की ताकत बढ़ गई। दिल्ली के सुल्तान को खतोली युद्ध में हराकर अपनी विजय के क्रम को आगे बढ़ाते हुए मांडू, (मालवा) के सुल्तान को गागरोन युद्ध में हराकर बंदी बना लिया। साथ ही अपनी उदारता और वीरता का परिचय देते हुए उसे छोड़ (मुक्त) कर दिया।

जण महैमद बन्दियों सुजड़ सेहै सेन सागारै।
मुदाकर गलमाल अपद उभराव उतारै॥[17]

तेजी से बढ़ते घटनाक्रम के कारण दिल्ली की गद्दी पर बाबर का शासन हो गया। उसकी विस्तारवादी नीति का विरोध और हिन्दुओं की रक्षा करते हुए महाराणा सांगा व दिल्ली के सुल्तान बाबर के बीच खानवा का युद्ध (1527) हुआ। "इस युद्ध में महाराणा साँगा ने मातृभूमि की रक्षा करते हुए अदम्य साहस का परिचय देते हुए लड़ाई लड़ी। जिसके कारण इन्हें 'हिन्दू पति' राजा कहा जाता है। इनके वीरता से प्रभावित होकर शत्रु बाबर इनकी प्रशंसा करते हुए लिखते है—

राणा साँगा अपनी बहादुरी और तलवार के बल पर बहुत बड़े हो गये जिसके कारण मालवा, दिल्ली और गुजरात का कोई अकेला सुल्तान इन्हें हराने में असमर्थ रहा। उसने अपने शासनकाल में लगभग दो सौ शहरों की मस्जिदें गिराई और बहुत से मुसलमानों शासकों को कैद कर लिया। जिसके कारण इनके राज्य की वार्षिक आय दस करोड़ और इनकी सेना में एक लाख सैनिक रहे महाराणा साँगा के तीन उत्तराधिकारी अगर योग्य होते तो मुगलों का राज्य भारतवर्ष में कभी भी जमने ही नहीं पाता।[18]

**महाराणा विक्रमादित्य (1531-1536 ई.)**—महाराणा साँगा की मृत्यु हो जाने के कारण महाराणा विक्रमादित्य चित्तौड़ के शासक बने "इस मौके का फायदा उठाकर सुल्तान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया जिसके कारण यहाँ के हालत बहुत चुनौतीपूर्ण बन गये। महाराणा विक्रमादित्य के छोटे होने के कारण राजपूत सरदार (बाघसिंह, हाड़ा अर्जुन) ने रानी कर्मावती के साथ मिलकर स्थिति का जायजा लिया और उन्होंने महसूस किया कि बादशाह की सेना बहुत बड़ी है। किले के भीतर राशन और युद्ध सामग्री केवल दो-तीन महीने ही चल पाएगी तभी सभी सामंतों ने मिलकर नन्हे राजकुमार विक्रमादित्य और उदयसिंह को सुरक्षित बूंदी भेज दिया और युद्ध का सारा भार बाघसिंह, सोलंकी, भैरवदास, झाला सज्जा ने ले लिया। उन्होंने बहादुरी से युद्ध लड़ा और सभी योद्धा वीरगति को प्राप्त हो गये। तब हाड़ी कर्मावती के नेतृत्व में हजारों वीरागनाओं ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए जौहर कर लिया यह चित्तौड़ का 'दूसरा साका' कहलाता है।[19]

**महाराणा उदयसिंह (1537-1572 ई.)**—विक्रमादित्य की हत्या बनवीर द्वारा कर देने पर वीरमाता पन्नाधाय ने उदयसिंह को बचाने के लिए टोकरे में उदयसिंह को बिठाकर एक वारिन और अपने पति के साथ देवरिया भेज दिया।[20] यहाँ बड़े होने पर उदयसिंह 1537 ई. में बनवीर के चित्तौड़गढ़ छोड़ने के बाद शासक बने। मुगल बादशाह अकबर ने अपनी विस्तार वादी नीतियों के कारण चित्तौड़गढ़ किले पर आक्रमण कर दिया। तब महाराणा उदयसिंह ने दूरदर्शिता और रणनीति का परिचय देते हुए, किले की सुरक्षा का भार जयमल और फत्ता को सौंप दिया "इस युद्ध में अकबर की सेना रोज बारूद से किले की बुर्ज और दीवारें तोड़ देती इसी दौरान अकबर की एक गोली जयमल मेड़तिया के पैर में लग जाने पर वह घायल हो जाते है और इधर किले में भोजन सामग्री खत्म होने लगी तो राजपूतों ने केसरिया बाना धारण कर लिया। फत्ता की पत्नी फुलकंवर के नेतृत्व में राजपूत स्त्रियाँ और बच्चों ने खुद को आग के हवाले कर दिया यह चित्तौड़ के इतिहास का 'तीसरा साका' कहलाता है।[21]

**महाराणा प्रताप (1572-1597)**—महाराणा उदयसिंह कुँवर जगमाल को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देते जिससे मेवाड़ के सारे सरदार नाराज हो जाते हैं। इन सभी ने मिलकर जगमाल को गद्दी से उतारकर कहा कि आप महाराणा प्रताप की गद्दी के सामने बैठेंगे है जिससे नाराज होकर जगमाल अकबर के पास चले जाते है और इस से अकबर खुश होकर सबसे पहले उसे जहाजपुर की जागीर देकर सिरोही का आधा राज्य भी दे देते हैं। इधर महाराणा प्रताप का 1 मार्च 1572 ई. में गोगुंदा में राजतिलक होता है और वे चित्तौड़गढ़ की राजगद्दी पर सभी सामंतों की इच्छा से बैठ जाते है।[22] जिस समय महाराणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठे उस समय राजपूताने की स्थिति काफी नाजुक हो चली। राजपूताने के लगभग सभी राजा

अकबर के आगे अपना सिर झुकाने लग गये परन्तु महाराणा प्रताप ने कभी भी अकबर के सामने सिर नहीं झुकाया। इससे महाराणा प्रताप हमेशा अकबर की आँखों में खटकते रहते।[23] इस कारण अकबर ने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर दिया जिसका सामना महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी के युद्ध में किया व अकबर की सेना के साथ बड़ी बहादुरी से युद्ध लड़ा और मेवाड़ के गौरव की रक्षा करी। इस युद्ध के कुछ समय बाद महाराणा प्रताप का स्वर्गवास हो गया। इनके स्वर्गवास की खबर सुनते ही अकबर ने महाराणा प्रताप की तारीफ करते हुए कहा कि "हे प्रताप इस संसार में आप ही ऐसे वीर रहे जिन्होंने अपने घोड़ों को मुगलिया दाग नहीं लगाया।

अस लेगो अणदाग पाग लेगा अणनामी
गो आडा गवड़ाय जीको बहतो घुरवामी
नवरोजे न गयो न गो आसतां नवल्ली
न गो झरोखा हेठ जेठ दुनियाण दहल्ली
गहलोत राणा जीती गयो दसण मूंद रसणा डसी
निसा मूक भरिया नैण तो मृत शाह प्रतापसी॥[24]

**महाराणा अमरसिंह प्रथम (1597-1620 ई.)**—महाराणा प्रताप के निधन के बाद महाराणा अमरसिंह का राजाभिषेक 19 जनवरी 1597 ई. में हुआ। ये भी अपने पिता के समान वीर योद्धा रहे जिन्होंने सलीम के आक्रमण का जबाब बड़ी मजबूती से देते हुए मुगलों की अनेक चौकियों पर कब्जा कर मुगल सुल्तान खान गौरी और कय्यूम को मार डाला। इनके किलों पर अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद 1603 ई. सलीम ने फिर से चित्तौड़ पर आक्रमण किया इस बार भी सलीम चित्तौड़ पर अधिकार नहीं कर सका। बार-बार आक्रमण से मेवाड़ की प्रजा को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता जिससे के कारण वे काफी विचलित हो गये तो उन्होंने अपनी निराशाजनक स्थिति का संदेश अपने मित्र कवि अब्दुर्रहीम खानखाना के पास पत्र लिखकर भेजा और सुझाव माँगा कहा कि हम सब मिलकर लगातार गोंड, कछावा, राठौड़ और गोरखा (भील) मुगलों से युद्ध करते हुए जंगलों में भटक रहे है, अब हमें क्या करना चाहिए।

गोड़ कछाहा, राठवड़ गोखां जोख करन्त।
कहजो खानखाना ने बनचर हुआ फिरन्त॥[25]

इस पत्र का जवाब खानखाना अब्दुर्रहीम ने मारवाड़ी भाषा में देकर लिखा घर में रहकर भी धूप की तरह तपना पड़ेगा, और संघर्ष की अग्नि में जलना पड़ेगा और अंत में अमरता और कीर्ति जब उत्पन्न होगी जब आप राणा हिम्मत बनाकर सलीम से संघर्ष करो।

घर रहसी रहसी घ्रम, खप जासी खुरसाण।
अमर बिसंभर उपरां, राखो नहचो राण॥[26]

पत्र का जवाब सुनकर अमरसिंह में उत्साह का संचार हो गया परन्तु लगातार युद्ध से बादशाह सलीम भी परेशान रहने लगा तो कर्णसिंह के कहने पर अमरसिंह ने बादशाह से इस बात पर संधि कर ली कि वे कभी भी मुगल दरबार में उपस्थित नहीं होंगे।[27]

## निष्कर्ष

चित्तौड़गढ़ भारतीय इतिहास में वीरता, त्याग, राष्ट्रभक्ति और सांस्कृतिक गौरव का अद्वितीय केंद्र रहा है यहाँ के शासकों ने अपने साहस, बलिदान और स्वाभिमान से भारतीय इतिहास को अमर गौरव प्रदान किया। बप्पा रावल से लेकर महाराणा अमरसिंह प्रथम तक के शासकों ने न केवल चित्तौड़गढ़ की सीमाओं का विस्तार किया। इसे अपनी राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का केंद्र भी बनाया। विषम परिस्थितियों में भी चित्तौड़ के शासकों ने स्वाभिमान से समझौता नहीं किया जिसका प्रमाण रानी पद्मिनी का जौहर, कर्मावती का बलिदान और महाराणा प्रताप का अकबर के सम्मुख न झुकना है। साथ ही, महाराणा कुम्भा का काल स्थापत्य कला का स्वर्णकाल के रूप में स्थापित हुआ जिसने भारतीय वास्तुकला को नई ऊँचाइया प्रदान की है। इस शोध-पत्र से सिद्ध होता है कि गुहिल वंश की गौरवशाली परम्परा और उसके द्वारा पोषित भारतीय मूल्य आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। चित्तौड़गढ़ के वीर योद्धाओं का संघर्ष इस बात का प्रमाण है कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए न केवल इतिहास का दस्तावेज है, अपितु यह अटूट देशभक्ति और राष्ट्र के प्रति समर्पण के स्थायी प्रेरणा का स्रोत है।

## सन्दर्भ सूची

1. श्यामलदास कविराज, वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास (भाग-प्रथम), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2017, पृ.सं. 251

2. मेनारिया, डॉ. मोतीलाल, राजप्रशस्ति महाकाव्य, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, 1973, पृ.सं. 31
3. श्यामलदास कविराज, वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास (भाग-प्रथम), पूर्वोक्त, पृ.सं. 250
4. जैन, डॉ. हुकमचंद एवं अन्य, राजस्थान का इतिहास, संस्कृति, परम्परा एवं विरासत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2022, पृ.सं. 44
5. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, उदयपुर राज्य का इतिहास (भाग-प्रथम), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2022, पृ.सं. 160
6. उपर्युक्त, पृ.सं. 161
7. नाहटा भँवरलाल, पद्मिनी चरित्र चौपाई (खंड-प्रथम), सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, 1971, पृ.सं. 03
8. जैन, डॉ. हुकमचंद व अन्य, पूर्वोक्त, पृ.सं. 45
9. श्यामलदास, कविराज, वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास (भाग-प्रथम), पूर्वोक्त, पृ.सं. 291
10. लाल, शिवव्रत, मेवाड़ और मारवाड़, पृ.सं. 57
11. जैन डॉ. हुकमचंद व अन्य, पूर्वोक्त, पृ.सं. 45
12. श्यामलदास, कविराज, वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास (भाग-प्रथम), पूर्वोक्त, पृ.सं. 310
13. व्यास, रामप्रसाद, महाराणा राजसिंह, राजस्थानी हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1974, पृ.सं. 10
14. जैन, डॉ. हुकमचंद एवं अन्य, पूर्वोक्त, पृ.सं. 46
15. सोमानी, रामवल्लभ, महाराणा कुम्भा, प्रकाशक हिन्दी साहित्य मन्दिर, प्रकाशन जोधपुर, सं. 1968, पृ.सं. 209
16. श्यामलदास कविराज, वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास (भाग-प्रथम), पूर्वोक्त, पृ.सं. 332
17. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास (प्रथम भाग), शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, आगरा, 1971, पृ.सं. 275
18. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास (भाग-प्रथम), हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, 1994, पृ.सं. 222
19. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, उदयपुर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2022, पृ.सं. 345
20. श्यामलदास, कविराज, वीर विनोद (द्वितीय भाग), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2017, पृ.सं. 61
21. गहलोत, जगदीश सिंह, पूर्वोक्त, पृ.सं. 231
22. श्यामलदास, कविराज, वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास (द्वितीय भाग), पूर्वोक्त, पृ.सं. 145
23. गहलोत, जगदीश सिंह, पूर्वोक्त, पृ.सं. 234
24. सिंहदेव, डॉ. पुष्यमित्र, राजस्थान के वीर योद्धा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2022, पृ.सं. 73
25. श्यामलदास, कविराज, वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास (द्वितीय भाग), पूर्वोक्त, पृ.सं. 234
26. उपर्युक्त, पृ.सं. 235
27. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, उदयपुर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), पूर्वोक्त, पृ.सं. 427